REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2018

भारतीय संघीय व्यवस्था : स्वरूप

रीना
Assistant Professor , Political Science Department ,
R. K. S. D. (P. G) College Kaithal.

भूमिका :–

संविधान निर्माताओं के सामने मुख्य प्रश्न था कि संविधान का स्वरूप एकात्मक हो या संघात्मक और इस प्रश्न पर माध्यम मार्ग अपनाया गया। भारतीय संविधान का बहिरंग संघात्मक है, पर अन्तरंग एकात्मक संविधान में भारत को ''राज्यों का संघ'' कहा गया है और संविधान में जहाँ कुछ संघवाद के लक्षणों का प्रभुत्व भी जहाँ–तहाँ दिखता है । सविधान निर्माताओं की मंशा भारत में संघात्मक व्यवस्था की स्थापना करना थी, लेकिन संविधान में कहीं पर भी 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। बल्कि 'संघ' के स्थान पर 'राज्यों का संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। डी. डी. बसु का विचार है कि, ''भारत का संविधान न तो पूर्णरूप से एकात्मक है और न ही पूर्णरूप से संघात्मक, बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है।

डॉ0 सुभाष कश्यप लिखते हैं कि 'प्रश्न जो प्रायः उठाया जाता है, वह है, केन्द्र और राज्यों के बिगड़ते हुए सम्बन्ध का, तथा संघात्मक व्यवस्था के भविष्य का। यहॉ भी हम एक भारी भ्रान्ति के शिकार हैं और वह यह कि भारतीय संविधान संघात्मक है अथवा फेडरल । क्या हम ऐसी संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय संसद जब चाहे राज्यों के नाम, सीमाएं, आकार, क्षेत्र आदि बदल सकती हो और मानचित्र में किसी राज्य विशेष को पूर्णयता मिटा सकती हो, जब चाहे राज्यों की प्रतिनिधि सरकार को शासन सीधे अपने हाथ में ले सकती हो।'' [1]

1. भारत में संघवाद की स्थिति का अध्ययन करना ।
2. भारतीय संघीय व्यवस्था में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का अध्ययन करना।

भारतीय संघ व्यवस्था का स्वरूप एंव प्रकृतिः–

भारतीय संघ व्यवस्था संघीय है अथवा नहीं और यदि संघीय तो उसकी प्रकृति तथा स्वरूप कैसा है? यह विवाद 1950 से ही चला आ रहा है । के. सी. व्हीयर को मुख्य रूप से इस विवाद का जन्मदाता माना जा सकता है क्योंकि उनके द्वारा इस सम्बन्ध में संदेह व्यक्त किया गया है कि भारतीय संघ व्यवस्था वस्तुतः संघीय है। इस सन्दर्भ में जो दो तथ्य उभर कर सामने आए हैं, उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

1. वैधानिक या संस्थागत विचारधारा
2. व्यावहारिक विचारधारा

वैधानिक संरचना सम्बन्धी दृष्टिकोण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि भारतीय संघ संघीय है यघपि इसकी संघीयता की मात्रा के विषय में मतभेद होना स्वाभाविक है। के. सी. व्हीयर, एलेक्जेन्ड्रोविच एंव पॉल एच. एपलबी इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक विद्वान हैं। के. सी. व्हीयर के अनुसार भारतीय संघ अधिक से अधिक अर्ध संघीय है। [2] उनकी यह मान्यता हमारे संविधान के सैद्धान्तिक व वैधानिक अध्ययन पर आधारित है। वैधानिक दृष्टिकोण की आलोचना अनेक आधारों पर की गई है। प्रथम भारतीय संधिवान द्वारा स्थापित संस्थाओं की औपचारिक विवेचना संविधान की गतिशीलता की उपेक्षा करती है। संविधान एक अस्थिपंजर मात्र है

जिसे दलीय राजनीति से जीवन और रक्त प्राप्त होता है। द्वितीय, वैधानिक दृष्टिकोण व्यवस्था के आन्तरिक कार्य की उपेक्षा करने के कारण सत्ताधिकारों के निर्दिष्ट विभाजन के अन्तर्गत होने वाले वास्तविक परिवर्तनों की विवेचना करने में विफल रहता है। राजनीति विज्ञान की तरह ही संघवाद के अध्ययन के क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने जल्द ही परम्परागत वैधानिक दृष्टिकोण का स्थान ले लिया। व्यवहारवादी संघ का अध्ययन उसके व्यवहारिक पहलू को ध्यान में रखकर करते हैं। इस प्रकार का अध्ययन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रक्रियात्मक निर्धारकों के प्रकाश में होता है। मार्क्स फ्रेण्डा, मॉरिस जोन्स तथा अशोक चन्दा ने भारतीय संघ व्यवस्था का व्यवहारिक अध्ययन विशेषकर नियोजन के परिप्रेक्ष्य में किया है। इन विद्वानों के अनुसार नियोजन के फलस्वरूप भारत में न केवल संघ व्यवस्था का ही अन्त हो गया है बल्कि संसदीय प्रणाली भी समाप्त प्रायः सी लगती है।

भारतीय संघ व्यवस्था की प्रकृति के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण के मूल्यांकन एंव प्रकृति के स्पष्ट विवेचन के लिए आवश्यक है कि संविधान में उपलब्ध संघ व्यवस्था के लक्षणों का विवेचन किया जाए। भारत में शासन व्यवस्था के स्वरूप पर विचार–विर्मश करते समय संविधान निर्माताओं के समक्ष यह स्पष्ट था कि देश की राजनीतिक विरासत, आर्थिक एंव भौगोलिक स्थिति तथा सामाजिक–सांस्कृतिक वैविध्यपूर्ण स्थिति के फलस्वरूप भारतीय संविधान में कहीं पर भी 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, इसके बावजूद भारत एक 'संघ–राज्य' है। भारतीय संविधान में संघ व्यवस्था के प्रमुख लक्षण अधोलिखित हैं–

संविधान की व्यापकता :–

संघीय व्यवस्था के लक्षणों के अनुरूप भारतीय संविधान को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। भारत में केन्द्र तथा राज्सों की उत्पत्ति संविधान के द्वारा ही हुई है तथा इसी के माध्यम से इन्हें शक्तियॉ प्रदान की गई हैं। भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक व्यापक संविधान हैं। [3]

संघीय व्यवस्था को अपनाने के कारण संघ व राज्यों की शक्तियों का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। इस प्रकार संविधान के द्वारा संघ के साथ–2 राज्यों की शासन व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया है।

शक्तियों का विभाजन :–

भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य शक्ति विभाजन का भी व्यापक प्रावधान किया गया है। राष्ट्रीय महत्व के 100 विषयों को केन्द्रीय सूची में सम्मिलित किया गया है जिन पर केवल संसद को ही विधि निर्माण का अधिकार प्रवत्त है। स्थानीय शासन के 61 विषयों को राज्य सूची के अन्तर्गत रखा गया है, जिन पर केवल राज्य विधानमंडल को ही कानून निर्माण का अधिकार दिया गया है। संविधान में समवर्ती सूची का प्रावधान किया गया है जिसमें 52 विषयों को शामिल किया गया है। इस सूची में उपलब्ध विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र और राज्य दोनों ही विधि पर केन्द्र निर्माण में सक्षम हैं, लेकिन दोनों सरकारों में संघर्ष होने की स्थिति में राज्य विधि पर केन्द्र की विधि को प्राथमिकता दी जाएगी।

सर्वोच्च न्यायालय : भारतीय संविधान के सरंक्षक के रूप में कार्य करने के लिए एक स्वतन्त्र सर्वोच्च न्यायालय की भी व्यवस्था की गई है। संविधान के द्वारा एक सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों में उच्च न्यायालयों की भी व्यवस्था की गई हैं, जिन्हें उन कानूनों को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है जो संविधान के विरूद्ध हैं। [4]

उच्च सदन का राज्य सदन होना : भारतीय संसद का उच्च सदन अर्थात् राज्य सभा राज्यों का सदन है। यह राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है । यघपि यह सच है कि यह प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर न होकर, जनसंख्या के आधार पर है।

संशोधन प्रणाली : भारतीय संविधान में संशोधन प्रणाली पूर्णतया संघीय प्रक्रिया के अनुरूप है। संशोधन विधेयकों को राष्ट्रपत्ति के समक्ष उनकी अनुमति के लिए प्रस्तुत करने से पूर्व कम–से–कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों के संकल्प द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। यदि आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति प्राप्त न हो तो संविधान के अनेक महत्वपूर्ण अंशों में संशोधन नहीं किया जा सकता।

व्यवहार में भारतीय संघवाद :–

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ संघवाद के स्वरूप में भी परिवर्तन आता रहा है। भारत की संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्वों के बदलते परिप्रेक्ष्य में निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है :

केन्द्रीकृत संघवाद का युग : 1950 से 1967 तक 'केन्द्रीकृत संघवाद का युग' कहा जा सकता है। 1950 से 1964 तक का भारतीय राजनीति युग 'नेहरू युग' कहलाता है। इस युग में केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध मधुर बने रहे और उनमें उग्र मतभेद उभरकर सामने नहीं आए। इस कारण व्यवहार में कुछ ऐसे राजनीतिक तथ्य उभरे जिन्होंने भारत में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को पनपने में मदद दी केन्द्र में नेहरू, पटेल जैसे नेता मौजूद थे। केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस का एकछत्र शासन था, अतःमतभेदों को दल के संगठन स्तर पर ही हल कर लिया जाता था।

सहयोगी संघवाद का युग : चौथे आम चुनाव (1967) के बाद शक्ति का सन्तुलन राज्यों की ओर झुका। कांग्रेस का एकमात्र शासन समाप्त हुआ। कांग्रेस दल के विभाजन के पश्चात् लोकसभा में शासक दल अल्पमत में आ गया जिससे केन्द्रीय नेतृत्व को राज्यों की मांग के आगे झुकना पड़ा।

1967 के चुनावों के बाद संघ व राज्यों के पास्परिक संवैधानिक सम्बन्धों के विषय में मतभेद काफी उग्र रूप में उत्पन्न हुए। अधिकतर राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की सरकारें बनीं। केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों के उपरान्त भी सहयोग बना रहा और 'सहयोगी संघवाद' के युग का आरम्भ हुआ। सहयोगी संघवाद का प्रमुख लक्षण केन्द्र और राज्यों की सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता है।

एकात्मक संघवाद का युग : 1971 के लोकसभा के चुनाव तथा 1972 के राज्य विधान सभाओं के चुनावों तथा 1980 के लोकसभा के चुनावों के बाद दो तथ्य उभरें–पहला भारतीय राजनीति में श्रीमती गांधी और संजय गांधी ही सर्वमान्य नेता है तथा दूसरा कांग्रेस दल ही जनता का नेतृत्व कर सकता है। इससे शक्ति का सन्तुलन केन्द्र की ओर झुक गया। जिस तरह से संविधान में संशोधन किए गए उससे तो प्रतीत होने लगा कि भारत एकात्मकता की ओर उन्मुख हो रहा है। [5]

सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था : छठे आम चुनावों के परिणामों से भारतीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन आया। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई और राज्यों में विविध दलों की सरकारों की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, दिल्ली, राजस्थान हरियाणा व हिमाचल प्रदेश में जनता पार्टी सत्ता में आई। पंजाब में जनता व अकाली दल, बंगाल में जनता सरकार एक दुर्बल सरकार थी क्योंकि यह विभिन्न घटकों से बनी एक गठबन्धन सरकार के समान थी। अतः राज्यों की सरकारों ने सौरेबाजी करने का प्रयत्न किया। तभी से भारत में संघ व्यवस्था का ''सौदेबाजी वाला प्रतिमान'' ही कार्यरत है।

भारतीय संविधान में एकात्मकता के लक्षण :–

संविधान निर्माताओं के द्वारा केन्द्रीय सत्ता को सुदृढ़ता प्रदान की गई है, क्योंकि भारतीय संघ आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं तथा प्रादेशिकता की संकीर्ण भावनाओं से ग्रसित था। इन समस्याओं के समाधान के लिए केन्द्रीय सरकार के पास पर्याप्त शक्तियों का होना आवश्यक था, इसीलिए एक सशक्त केन्द्र की स्थापना की गई है। भारतीय संविधान में उपलब्ध एकात्मकता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैः

सातवीं अनुसुची में तीन सूचियों का प्रावधान : संविधान की सातवीं अनुसुची में वर्णित सूची में संघीय सूची के सर्वाधिक विषयों को सम्मिलित किया गया है, जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण 100 विषय है। इन पर विधि निर्माण की शक्ति एक मात्र केन्द्रीय सरकार में निहित है। समवर्ती सूची में 52 विषयों पर केन्द्र व राज्य दोनों के ही विधनमंडल विधि निर्माण में सक्षम हैं लेकिन दोनों द्वारा निर्मित विधियों में विधानाभास उत्पन्न होने पर केन्द्रीय कानून ही मान्य होते है। राज्य सूची में परिगणित विषयों पर राज्यों को कानून बनाने का एकाधिकार प्राप्त नहीं

है। संविधान के अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत राज्य सभा को यह अधिकार है कि वह दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर विधि निर्माण के लिए अधिकृत कर सकती है। [6]

विशेष उपबन्ध : एक तरफ जब कभी केन्द्र सरकार के द्वारा अनुच्छेद 352 व 356 के अन्तर्गत आपातकाल की उद्घोषणा की जाती है तो संविधानका स्वरूप संघात्मक से एकात्मक व्यवस्था में परिवर्तित हो जाता है तथा राज्यों की सम्पूर्ण शक्तियॉ केन्द्र में निहित हो जाती हैं। वहीं दूसरी तरफ राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी राज्यपाल होता है, जो राज्य विधानसभा को भंग कर सकता है तथा मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर सकता है। केन्द्र सरकार राज्यपाल के माध्यम से राज्यों पर अपना आधिपत्य सुरक्षित रखती है। केन्द्र के द्वारा राज्य की सीमाओं व नाम आदि में भी जब चाहे परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि राज्यों की सरंचना कितनी अशक्त है जब उनका सम्पूर्ण अस्तित्व ही केन्द्र सरकार पर निर्भर है। [7]

एकल संविधान : सामान्यतः एक संघ में राज्यों को केन्द्र से हटकर अपना संविधान बनाने का अधिकार होता है। भारत में इससे इतर राज्यों को ऐसी कोई शक्ति नहीं दी गई है। भारतीय संविधान सिर्फ केन्द्र का ही नहीं, राज्यों का भी है। राज्य एंव केन्द्र दोनों को इसी एक ढांचे का पालन अनिवार्य है।

एकल नागरिकता : दोहरी व्यवस्था के बावजूद भारत का संविधान कनाडा की तरह एकल नागरिकता की व्यवस्था को अपनाता है। यहॉ केवल भारतीय नागरिकता है, कोई अन्य पृथक् राज्य नागरिकता नहीं हैं। अन्य संघीय व्यवस्था वाले देशों, जैसे– अमेरीका, स्विट्जरलैण्ड एंव आस्ट्रेलिया में दोहरी (राष्ट्रीय एंव राज्य) नागरिकता का प्रावधान है।

अखिल भारतीय सेवाएं : अमेरीका में संघीय सरकार एंव राज्य सरकारों की अपनी लोक सेवाएं हैं। भारत में भी केन्द्र एंव राज्यों की पृथक् लोक सेवाएं हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय सेवाएं केन्द्र एंव राज्य दोनों के लिए हैं। केन्द्र के द्वारा इन सेवाओं के सदस्यों का चयन किया जाता हैं एंव उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। उन पर केन्द्र का पूर्ण रूप नियंत्रण होता है। अतः ये सेवाएं संविधान के अन्तर्गत संघीय सिद्धांत का उल्लंघन करती हैं। [8]

एकीकृत निर्वाचन मशीनरी: चुनाव आयोग न केवल केन्द्रीय चुनाव सम्पन्न करता है बल्कि राज्य विधानमण्डलों के चुनाव भी करता है। लेकिन इस इकाई की स्थापना राष्ट्रपति द्वारा होती है और राज्य इस मामले में कुछ नहीं कर सकते। इसके सदस्यों को भी इसी प्रकार हटाया जा सकता है। इसके विपरीत अमेरीका में संघ एंव राज्य दोनों के निर्वाचन के लिए अलग मशीनरी होती है।

राज्य अनश्वर नहीं :अन्य संघों के विपरीत, भारत में राज्यों को क्षेत्रीय एकता का अधिकार नहीं है। संसद एकतरफा कार्यवाही द्वारा उनके क्षेत्र, सीमाओं या राज्य के नाम को परिवर्तित कर सकती है अर्थात् इसके लिए साधारण बहुमत की जरूरत होती है न कि विशेष बहुमत की। इस तरह भारतीय संघ–अनश्वर राज्यों का अनश्वर संघ है। [9]

भारतीय संघ व्यवस्था में केन्द्र राज्य सम्बन्ध

भारत का संविधान अपने स्वरूप में संघीय है तथा समस्त शक्तियां (विधायी, कार्यपालक और वित्तीय) केन्द्र एंव राज्यों के मध्य विभाजित है। यघपि न्यायिक शक्तियों का बंटवारा नहीं है। संविधान में एकल न्यायिक व्यवस्था की स्थापना की गई है जो केन्द्रीय कानूनों की तरह ही राज्य कानूनों को लागू करती हैं। यघपि केन्द्र एंव राज्य अपने–अपने क्षेत्रों में प्रमुख हैं, तथापि संघीय तंत्र प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए इनके मध्य अधिकतम सहभगिता एंव सहकारिता आवश्यक है। केन्द्र एंव राज्यों के संबंधों का अध्ययन तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता है:

- विधायी सम्बन्ध
- प्रशासनिक सम्बन्ध
- वित्तीय सम्बन्ध

विधायी सम्बन्ध : भारतीय संविधान के भाग 11 के प्रथम अध्याय में अनुच्छेद 245 से 255 तक केन्द्र एंव राज्यों के विधायी सम्बन्धों का उल्लेख किया गया है। संविधान की अनुसुची सात में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को तीन सुचियों के माध्यम से विशलेषित किया गया है। प्रथम सूची संघीय सूची में 100 विषयों को सम्मिलित किया गया है, इसमें प्रतिरक्षा, सशस्त्र सेनाएं, विदेशी सम्बन्ध, विनिमय, जनगणना, मुद्रा टंकण आदि विषय सम्मिलित हैं। द्वितीय सुची राज्य सूची में 61 विषय हैं, जिसमें कानून व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन, सर्वाजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई आदि को शामिल किया गया है। तीसरी सूची समवर्ती सूची है जिसमें 52 विषय है जिनमें आर्थिक एंव सामाजिक नियोजन, शिक्षा, वन, जनसंख्या नियंत्रण एंव परिवार नियोजन को शामिल किया गया है।

केन्द्रीय सरकार को तुलनात्मक रूप से अधिक महत्व एंव शक्ति प्रदान करने की दृष्टि से अवशिष्ट अमेरीका और स्विट्जरलैण्ड में यह शक्तियॉ संघ की इकाइयों को प्रदान की गई है। अमेरीका में कांग्रेस के द्वारा किसी भी स्थिति में राज्यों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता हैं। भारत में अवशिष्ट शक्तियॉ केन्द्रीय सरकार के पास हैं। केन्द्रीय सूची और अवशिष्ट विषयों पर केन्द्र को विधि बनाने की एक मात्र शक्ति भी प्रदान की गई है। यदि राज्यसभा अपने दो–तिहाई बहुमत से किसी राज्य सूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो संसद उस विषय पर विधि निर्माण कर सकती है। इस प्रकार के कानून को केवल एक वर्ष की अवधि तक के लिए बढ़ाया जा सकता है। आपातकाल की घोषणा के समय संसद के द्वारा राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून का निर्माण किया जा सकता है। अनुच्छेद 252 के अनुसार स्वयं राज्यों के द्वारा भी संसद को राज्य सूची के किसी विषय पर विधि निर्माण का अधिकार दिया जा सकता है। इसके साथ ही संसद अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को प्रभावी बनाने के लिए राज्य सूची के विषय पर विधि निर्माण करने में भी सक्षम है। संवैधानिक तंत्र के विफलहाने पर राष्ट्रपत्ति राज्य विधानमंडल के समस्त अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 200 के द्वारा राज्य प्रस्तावों के विषय में राष्ट्रपति को निषेधाधिकार प्रदान किया गया हैं। संविधान संशोधन प्रक्रिया में भी राज्यों की अपेक्षा केन्द्र की स्थिति सर्वोच्च है। [10]

प्रशासनिक सम्बन्ध :संघीय व्यवस्था की सुदृढ़ता एंव केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में समायोजन, सहयोग, समन्वय एंव सह–अस्तित्व की भावना को विकसित करने के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए हैं। भारतीय संविधान के ग्यारहवें भाग के द्वितीय अध्याय में केन्द्र और राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अन्तर्गत केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को विधि निर्माण का अधिकार प्रदत्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 के तहत राज्यों की प्रशासनिक शक्तियॉ उन विषयों तक सीमित है जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। समवर्ती सूची के विषयों के सन्दर्भ में प्रशासनिक अधिकार सामान्यतया राज्यों में निहित हैं परन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियों का संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों द्वारा सीमित रखा गया है जो या तो संविधान द्वारा या विधि द्वारा प्रदत्त है। [11] भारतीय राजव्यवस्था में प्रशासन का महत्व काफी बढ़ गया है। केन्द्रीय सरकार को राज्यों के ऊपर नियंत्रण के अनेक अधिकार प्रदान किए गए है, लेकिन इसके साथ ही राज्यों को भी स्वायत्तता एंव उत्तरदायित्वों का व्यापक क्षेत्र मिला हुआ है। राज्यों के ऊपर संघीय नियंत्रण के कई उदाहरण इस प्रकार है :

केन्द्र द्वारा राज्यों को निर्देश देने का अधिकार : केन्द्र राज्यों को निर्देश दे सकता है कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय एंव सैनिक महत्व के मार्गो व पुलों का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार ही करती है, लेकिन केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त है कि वह इनके निर्माण और उचित रख–रखाव के लिए राज्यों को आवश्यक दिशा–निर्देश दे सकता है। संविधान के अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करेगा जिससे संसद द्वारा निर्मित विधियों

का और राज्य की विधियों का पालन होता रहें तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति राज्यों को ऐसे निर्देश देने हेतु सक्षम होगी जो कि भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो।

जल–विवाद सम्बन्धी प्रावधान : संविधान के अनुच्छेद 262 के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह अन्तर राज्यीय नदियों के जल विभाजन से सम्बन्धित उत्पन्न होने वाले विवादों के समाधान हेतु उचित कानूनों का निर्माण करें। संसद किसी भी नदी के या नदी घाटी परियोजना के पानी के प्रयोग, वितरण या नियंत्रण सम्बन्धी विवाद के सन्दर्भ में मध्यस्थता की व्यवस्था कर सकती है। संसद सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवादों पर विचार करने से रोक सकती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को अन्तरराज्यीय परिषद् की स्थापना का अधिकार प्रदान किया गया है। इन परिषदों का उद्देश्य है कि व राज्यों के आपसी विवादों तथा राज्यों के या संघ एंव राज्यों के सामान्य हित के आपसी मामलों में जांच करें और उन्हें सलाह दें तथा नीति एंव कार्यवाही के बेहतर समन्वय के सन्दर्भ में सिफारिश करें। केन्द्र और राज्यों के मध्य तथा राज्यों के बीच परस्पर सहयोग के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं, जैसे :

क्षेत्रीय परिषदों की स्थापना पूर्वोक्त संवैधानिक और वैधानिक संस्थाओं के अतिरिक्त संघीय स्तर पर कुछ परामर्श दात्री संस्थाएं हैं। ऐसी संस्थाओं में सबसे अग्रणी योजना आयोग रही है, जिसका प्रमुख कार्य देश के संसाधनों का सर्वाधिक प्रभावी ढंग से व संतुलित उपयोग के लिए योजनाएं निर्मित करना रहा है। वर्तमान में मोदी सरकार ने योजना आयोग को भंग करके नीति आयोग की स्थापना की है। भारत में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य एक प्रभावपूर्ण प्रशासनिक धुरी की स्थापना की गई है, साथ ही संघीय व्यवस्था में प्रशासनिक एकरूपता पर भी बल दिया गया हैं।

वित्तीय सम्बन्ध : केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में केन्द्रीय प्रधानता वाली भारतीय संघवाद की प्रवृति ही दृष्टिगोचर होती है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वित्तीय दृष्टि से संघीय सरकार अधिक सशक्त है। भारतीय शासन व्यवस्था में केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध अत्यधिक जटिल स्थिति में हैं। संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं वर्णित हैं : प्रथम केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का विभाजन किया गया है और द्वितीय करों से प्राप्त आय का बंटवारा किया जाता हैं। संघीय सूची के विषयों पर केन्द्र सरकार के द्वारा कर लगाया जाता है तथा राज्य सूची के विषयों पर राज्यों को कर लगाने का अधिकार प्राप्त है। राज्य सूची में वर्णित विषयों पर लगाए जाने वाले करों को एकत्रित करके राज्य अपने ही पास रखते हैं, जबकि संघ सूची में वर्णित विषयों पर लगाए जाने वाले करों का संग्रहण करके कुछ कर पूर्णतया अथवा अंशत : राज्यों में वितरित कर दिए जातें हैं। जैसे : ऐसे कर जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाते हैं लेकिन राज्यो द्वारा एकत्रित व संग्रहित किए जाते हैं (सम्पदा शुल्क, रेलवे शुल्क, समुन्द्र शुल्क) तथा ऐसे कर जो केन्द्र सरकार लगाती है और एकत्रित करती है परन्तु केन्द्र व राज्यों के मध्य वितरित कर दिए जाते हैं (कृषि आय के अतिरिक्त आय कर)। [12]

राज्यों को सहायक अनुदान देने का भी संविधान में प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 275 के तहत संसंद उन राज्यों को वित्तीय सहायत प्रदान की शक्ति प्रदान करती है जिन्हें इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अनुदान वित्त आयोग की सिफारिश पर प्रदान किए जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 293 के तहत राज्यों की सरकारें देशवासियों तथा केन्द्र सरकार से ऋण ले सकती है। यदि किसी राज्य सरकार पर संघ सरकार का कोई ऋण बकाया है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज संघ सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। संविधान के अनुच्छेद 280 (1) के अन्तर्गत राष्ट्रपति के द्वारा प्रत्येक पांच वर्षो के पश्चात् वित्त आयोग की नियुक्ति की जाती है जिसके कार्य इस प्रकार है:

- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य करों से प्राप्त धन राशि के विभाजन एंव वितरण का सुझाव देना ।
- अनुदान सम्बन्धी प्रावधानों को निश्चित करना।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल के परामर्श से भारत के नियंत्रक एंव महालेखा परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा–जोखा रखने के ढंग और उसकी निष्पक्ष

रूप से जॉच करता है। इस अधिकार के माध्यम से ही भारतीय संघ और राज्य की आय पर नियंत्रण रखा जाता है। [13]

केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि भारत में संघीय सरकार को विधायी, प्रशासनिक एंव वित्तीय तीनों में सशक्त बनाया गया है।

भारत में संघीय व्यवस्था का आलोचनात्मक मूल्यांकन :–

संघीय शासन का मूल्यांकन संविधान के अध्ययन के द्वारा पूर्णत : संभव नहीं है बल्कि संघीय शासन के वास्तिविक कार्यकरण को देखना आवश्यक है। भारत में राज्यों के मुख्यमंत्री स्वतन्त्र एंव पृथक शक्तियों का प्रयोग करते हैं और व अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिए संघ सरकार पर निर्भर नहीं हैं। इसलिए संघीय शासन प्रकार्यात्मक और राजनीतिक अवधारणा भी है, जिसे केवल विधि के अध्ययन के द्वारा नहीं समझा जा सकता। भारत का संविधान अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया की तरह एक परम्परागत संघीय व्यवस्था से भिन्न संविधान है और इसमें कई एकात्मक या गैर–संघीय विशेषताएं हैं, जैसे–केन्द्र के पक्ष में शक्ति का संतुलन है। यह संविधान विशेषज्ञों द्वारा भारतीय संविधान के संघीय चरित्र को चुनौती देने के लिए पर्याप्त है। इसलिए के. सी. व्हीयर ने भारतीय संविधान को 'अल्प संघीय' करार दिया है। [15] भारतीय संविधान के एकात्मक होने के उत्तरदायी दो कारण हैं– पहला, वित्तीय मामले में केन्द्र का प्रभुत्व एंव राज्यो की केन्द्रीय अनुदान पर निर्भरता और दूसरा, शक्तिशाली योजना आयोग द्वारा राज्य की विकास प्रक्रिया को नियंत्रित करने की व्यवस्था। ग्रेनविल ऑस्टिन कहते हैं कि ''यह सरकारी संघ व्यवस्था है। यघपि भारत के संविधान ने मजबूत केन्द्र सरकार का निर्माण किया है, इसके राज्यों को भी कमजोर नहीं किया गया है। यह एक नये प्रकार का संघ है जो इसकी खास विशेषताओं को पूरा करता है।'' पॉल एप्पलबी कहते हैं कि भारतीय संविधान पूरी तरह संघीय हैं। लेकिन मोरिस जॉन्स इसे 'सहमति वाला संघ' कहते है। कार्यपालिका क्षेत्रों में संघ सरकार राज्यों को निर्देश देता है तथा वित्तीय क्षेत्रों में राज्य, संघ के अनुदान पर निर्भर होते हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि संघ और राज्य एक–दूसरे के समकक्ष नहीं है, बल्कि राज्य, संघ पर निर्भर है। इसलिए आलोचकों ने भारतीय संघीय व्यवस्था को अर्द्धसंघात्मक कहा है। [16]

बोम्मई मामले (1994) में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संविधान संघीय है और संघीय इसकी 'मूल विशेषता' है। यह महसूस किया गया कि 'संविधान की व्यवस्था के तहत राज्य की तुलना में केन्द्र में बड़ी शक्तियां निहित हैं। 'इसका मतलब यह नहीं कि राज्य केन्द्र पर ही निर्भर हैं। राज्यों का अपना संविधानिक अस्तित्व है। ये केन्द्र के एजेन्ट नहीं है। अपने क्षेत्र में राज्य सर्वोच्च है। इसलिए यह कहना अनुचित है कि राज्य केन्द्रों के अधीन कार्य करतें हैं। अतः भारतीय संविधान को अलग–अलग राजनीति शास्त्रियों ने अलग–2 तरह से परिभाषित किया है। इसीलिए भारतीय संविधान न तो पूरी तरह से संघात्मक है और न ही पूरी तरह से एकात्मक। भारतीय संविधान में दोनों के लक्षण पाए जाते हैं। इसीलिए इसे अर्द्ध संघीय भी कहा जाता है।[17]

निष्कर्ष :–

अन्त में हम कह सकते हैं कि भारतीय संघवाद की सबसे अधिक सही व्याख्या यह होगी कि विभिन्न कालों में इसके विभिन्न रूप व्यवहार में देखने को मिलते हैं। भारत में एक प्रकार का संघवाद नहीं, अनेक प्रकार के संघवाद हैं। एक ही समय में अलग–अलग राज्यों से केन्द्र के भिन्न–भिन्न प्रकार के सम्बन्ध रहे हैं। कभी इन सम्बन्धों की व्याख्या 'सहयोगी संघवाद' के आधार पर तो कभी 'एकात्मक संघवाद' के आधार पर और प्रतियोगी दल व्यवस्था के युग में 'सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था' के आधार पर की जा सकती है। वैसे तो ये तीनों ही प्रवृत्तियॉ ही संघात्मक व्यवस्था में एक साथ विघमान रहती हैं, परन्तु कभी–कभी ऐतिहासिक सा बाहरी घटनाओं के कारण इनमें से किसी एक की प्रमुखता इसे अन्य दो से अलग श्रेणी की बना देती है। यह सत्य है कि भारतीय संघीय व्यवस्था में संघ ज्यादा शक्तिशाली है तथा संघ में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति विघमान है, परन्तु संघीय शासन में संघ एंव राज्यों के बीच सहयोग के महत्वपूर्ण बिन्दु भी उल्लिखित हैं। इसलिए भारतीय संघ को सहकारी संघीय व्यवस्था कहा जाता है।

[1] सुभाष सी. कश्यप (2004), *अवर पार्लियामेन्ट*, नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ. 40
[2] के. सी. व्हीयर (1951), *फैडरल गवर्नमेन्ट*, लन्दन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 25
[3] आइवर जेनिंग्स (1953), *सम केरेक्टरस्टिक्स ऑफ इंडियन कॉन्स्टीट्यूशन*, चेन्नई : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 112
[4] वी. एम. पायली (1953), *भारतीय संविधान एक परिचय*, नई दिल्ली : विकास प्रकाशन, पृ. 41
[5] कश्यप, पूर्वउल्लेखित, पृ. 51
[6] धर्मराज शर्मा (2005), *भारतीय संघ व्यवस्था : केन्द्र–राज्य सम्बन्ध*, नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन, पृ. 52
[7] शर्मा, पूर्वउल्लेखित, पृ. 53
[8] वही, पृ. 55
[9] व्हीयर, पूर्वउल्लेखित, पृ. 60
[10] शारदा रथ (1984), *फेडरलिज्म टूडे*, नई दिल्ली : स्टरलिंग पब्लिकेशन, पृ. 30
[11] राजेन्द्र कुमार पांडे (2013), ''पॉलिटिकल डायनामिक्स ऑफ फेडरलिज्म इन इंडिया'', *इंडियन जनरल ऑफ फेडरल स्टडीज, 14 (1) :* 119–139
[12] कश्यप, पूर्वउल्लेखित, पृ. 60
[13] शर्मा, पूर्वउल्लेखित, पृ. 58
[14] व्हीयर, पूर्वउल्लेखित, पृ. 28
[15] मेरिस जोन्स (1971), *गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया*, लन्दन : हचिसन, पृ. 150
[16] जेनिंग्स, पूर्वउल्लेखित, पृ. 115
[17] डी. डी. बसु (2005), *भारत का संविधान : एक परिचय*, नई दिल्ली : वाधवा एण्ड कम्पनी, पृ. 52